

महाभारत

For
Students



महाभारत

for Students



सुरुचि प्रकाशन

केशव कुंज, झण्डेवाला, नई दिल्ली-110055

Copyrighted material

महाभारत
For Students

Author
K. K. Shanmukhan

अनुवादक
भारत भूषण आर्य

प्रकाशक

सुरुचि प्रकाशन

केशव कुंज, झण्डेवाला,
नई दिल्ली - 110055

दूरभाष : 011-23514672, 23634561
E-mail : suruchiprakashan@gmail.com
Website : www.suruchiprakashan.in

© सुरुचि प्रकाशन

द्वितीय संस्करण : फरवरी, 2016

मूल्य : ₹ 30

पृष्ठ संयोजक : अमित कुमार

मुद्रक : भारत ऑफसेट वर्क्स

ISBN : 978-93-84414-28-3

विषय-सूची

अध्याय	पृष्ठ क्र.
प्राक्वथन	5
1. सारांश	7
2. श्रीकृष्ण	13
3. भीष्म	17
4. द्रोणाचार्य	23
5. विदुर	27
6. कर्ण	31
7. युधिष्ठिर	37
8. भीम	41
9. अर्जुन	47
10. नकुल तथा सहदेव	52
11. अभिमन्यु	53
12. कुंती एवं मादरी	56
13. द्रौपदी	58
14. धृतराष्ट्र	61
15. दुर्योधन	63
16. शकुनि	65
17. गांधारी	66
18. उपसंहार	68

प्राक्कथन

देवाधिदेव गणेश एवं कवि महर्षि व्यास को नमन !

महर्षि व्यास अठारह पुराणों का 'सुव्यवस्थित लेखन-कार्य' कर चुके थे। इन पुराणों के माध्यम से मनुष्य मात्र के लिए एक संदेश था "दूसरों की सहायता करना वास्तव में पुण्य है तथा किसी को पीड़ा पहुँचाना पाप है।"



परन्तु पुराणों के सुव्यवस्थित लेखन-कार्य से पूर्ण रूप से संतुष्ट न होने के कारण उन्होंने मानव जाति के परम कल्याण के लिए महानतम धर्मग्रंथ महाभारत की रचना की। महाभारत अनेक नैतिक कथाओं का भंडार है। यह ग्रंथ मानव चरित्र की सूक्ष्मतम भावनाओं पर प्रकाश डालता है। इसीलिए कवि ने स्वयं ही घोषणा की कि "जो महाभारत में नहीं मिलेगा, वह कहीं नहीं मिलेगा।"

कथानक सोचने के पश्चात् व्यास जी देवाधिदेव गणपति के पास पहुँचे और उन्हें कथा सुनकर लिखने की प्रार्थना की। गणपति जी ने उनकी प्रार्थना सहर्ष स्वीकार कर ली क्योंकि यह नेक व शुभ कार्य विश्व के कल्याण एवं शांति के लिए किया गया था।

महर्षि व्यास के पुत्र संत श्री शुक देव सर्वप्रथम इस नेक कार्य से लाभान्वित हुए थे। उसके बाद यह परंपरागत रूप से भावी पीढ़ियों को क्रमशः सौंप दिया गया।

महान साहित्यिक रचना होने के साथ-साथ महाभारत राजनैतिक शासन व्यवस्था का सर्वोत्तम विश्लेषण करने वाला ग्रंथ है। यह ग्रंथ हमारे सम्मुख हजारों वर्षों के युद्ध कला, इतिहास, भूगोल एवं मनोविज्ञान का पूर्ण एवं विश्वसनीय चित्र प्रस्तुत करता है।

समस्त धार्मिक ग्रंथों में श्रीकृष्ण के द्वारा अर्जुन को दी गई शिक्षा के रूप में महाभारत एक अधिकृत ग्रंथ है। अठारह दिन तक चले महाभारत नामक युद्ध के आरंभ में भगवद् गीता का रहस्योद्घाटन किया गया। □

सारांश

राजा शांतनु की दो पत्नियाँ थीं। प्रथम पत्नी गंगा से देवव्रत नामक पुत्र उत्पन्न हुए, जो आगे चलकर भीष्म नाम से विख्यात हुए। दूसरी पत्नी सत्यवती के दो पुत्र चित्रांगद तथा विचित्रवीर्य हुए। भीष्म आजन्म (जीवनभर) ब्रह्मचारी (अविवाहित) रहे। चित्रांगद एक गंधर्व से युद्ध करते हुए मारे गए। चित्रांगद संतानहीन थे। विचित्रवीर्य के दो पुत्र हुए - पत्नी अंबिका से धृतराष्ट्र एवं पत्नी अंबालिका से पाण्डु। धृतराष्ट्र के पुत्र कौरव तथा पाण्डु के पुत्र पाण्डव कहलाये।

ज्येष्ठ (बड़े) पुत्र धृतराष्ट्र का विवाह गांधारी से हुआ। यद्यपि गांधारी नेक एवं सच्चरित्र नारी थी, परन्तु उसका दुष्ट भाई शकुनि सभी प्रकार की दुर्भावनाओं एवं षड्यंत्रों का प्रतीक था। क्योंकि धृतराष्ट्र जन्मांध थे, उनके छोटे भाई पाण्डु का राजा के नाते राजतिलक किया गया। पाण्डु की दो पत्नियाँ थीं - कुंती तथा मादरी। पाण्डु को कुंती से तीन पुत्र - युधिष्ठिर, भीम तथा अर्जुन प्राप्त हुए तथा मादरी से दो - नकुल एवं सहदेव। ये पाँचों पुत्र दिव्य मंत्रों के प्रभाव से उत्पन्न हुए। ये मंत्र कुंती को दुर्वासा ऋषि से प्राप्त हुए थे।

एक दिन पाण्डु से अनजाने में भ्रमपूर्वक एक ऋषि की हत्या हो गई। यह ऋषि वन में एक मृग (हिरण) के रूप में विचरण कर

रहे थे। ऋषि ने पाण्डु को श्राप दिया। पश्चात्ताप के रूप में पाण्डु ने राज-पाट छोड़कर शेष जीवन वनों में तपस्या करते हुए बिताने का निश्चय किया। वे राज्य पितामह भीष्म एवं मंत्री विदुर की देख-रेख में सौंपकर दोनों पत्नियों के साथ वन में चले गए। वन में पाण्डु दुर्घटनावश स्वर्ग सिधार गए। मादरी अपने शोक पर काबू न पा सकी और वह अपने पति के साथ परंपरागत रूप से सती हो गई (पति के साथ ही आग में जिंदा जल मरी)। अतः कुंती को ही पाँचों पुत्रों का पालन-पोषण करना पड़ा।

वनवासी ऋषियों ने ज्येष्ठ पुत्र युधिष्ठिर के युवा होने पर पांडवों को हस्तिनापुर में पहुँचाकर भीष्म को सौंप दिया। हस्तिनापुर में भीष्म की छत्रछाया में पांडवों का लालन-पालन व शिक्षा बड़े सुंदर ढंग से होने लगी।

भीष्म, आचार्य कृप एवं आचार्य द्रोण के मार्गदर्शन में पाण्डव वेदों, वेदांत, तथा क्षत्रियों के अनुरूप अनेक शास्त्रों एवं शस्त्र विद्या में पारंगत (निपुण/कुशल) हो गए। धृतराष्ट्र के पुत्र 'कौरव' उनसे ईर्ष्या करने लगे। वे पांडवों को समाप्त करने के लिए लगातार षड्यंत्र करने लगे।

कुंती के द्वितीय पुत्र भीम कौरवों से शारीरिक शक्ति एवं कुशलता में अति श्रेष्ठ थे तथा हँसी-मजाक में कई बार कौरवों को व्यथित करते रहते थे। भीष्म तथा अन्य सभी वरिष्ठ जनों के द्वारा युधिष्ठिर को योग्यतम युवराज के रूप में स्वीकृति मिलने पर कौरवों में ज्येष्ठ दुर्योधन के लिए अग्नि में घी डालने के समान अत्यंत कष्ट हुआ। साथ ही सर्वोत्तम योद्धा के रूप में अर्जुन की



ख्याति भी कौरवों के लिए ईर्ष्या व द्वेष का प्रमुख कारण बनी।

कुछ खेलों तथा अन्य कार्यों के बहाने से दुर्योधन पांडवों को एक सूनसान घाटी में ले गया। वहाँ परम कोटी नामक एक तालाब में भीम को डुबोकर मारने का षड्यंत्र भी किया। परंतु वह बच गया।

दुर्योधन, उसके भाइयों तथा मित्रों ने धृतराष्ट्र से स्वीकृति लेकर पांडवों को माता सहित लाक्षाग्रह (मोम से बना महल जो

तुरंत आग पकड़ सके) में जिंदा जलाने का षड्यंत्र भी किया। परंतु वे सब महात्मा विदुर की सूझ-बूझ एवं सहायता से संकट से उबर कर बच गए। भविष्य में होने वाले अन्य षड्यंत्रों से बचने के लिए पांडव एकचक्र नाम के गाँव में ब्राह्मणों के वेश में रहने लगे। बाद में उन्हें राजा द्रुपद की सुपुत्री द्रौपदी के स्वयंवर के बारे में जानकारी मिली। वे भी उस समारोह में भाग लेना चाहते थे। द्रुपद के दरबार में अनेक बड़े-बड़े राजा उपस्थित थे। सभी द्रौपदी के साथ विवाह की इच्छा से आए थे। परन्तु उनमें से कोई भी शक्ति परीक्षण में स्वयंवर की शर्त पूरी नहीं कर सका। अंत में अर्जुन ने सरलता से विजयश्री के रूप में द्रौपदी को पत्नी के रूप में पा लिया।

द्रुपद के उत्तम सहयोग तथा भीष्म के परामर्श एवं देख-रेख में कौरव तथा पाण्डव दो पृथक-पृथक राजधानियों से शासन करने लगे। पांडवों की राजधानी इंद्रप्रस्थ थी तथा कौरवों की हस्तिनापुर।

यद्यपि इंद्रप्रस्थ लगभग बंजर पथरीला क्षेत्र था, जिसमें नाम मात्र हरियाली थी। परंतु पाण्डवों ने ठीक योजना एवं परिश्रमपूर्वक इंद्रप्रस्थ को शस्य-श्यामला भूमि के रूप में बदल दिया। दुर्योधन अपने चचेरे भाइयों के महल में आया। दुर्योधन इंद्रप्रस्थ का वैभव एवं शान देखकर आश्चर्य चकित हो गया। वह अपने षड्यंत्रकारी दिमाग से पाण्डवों से उनकी राजधानी येन-केन प्रकारेण (जैसे भी हो सके) छीन लेने के लिए दुष्ट योजनाएँ बनाने लगा।

दुर्योधन ने युधिष्ठिर को पासे का खेल (चौसर) खेलने के

लिए आमंत्रित किया। परंपरा वश युधिष्ठिर को आमंत्रण स्वीकार करना पड़ा। दुर्योधन के स्थान पर खेलने का दायित्व उसके मामा शकुनि को दिया गया। शकुनि पासे के खेल में निष्णात था। युधिष्ठिर को शकुनि के साथ ही खेलना पड़ा। युधिष्ठिर लगातार (क्रमशः) हारते रहे। वे अपना राज्य तथा चल एवं अचल संपत्ति सब हार गए। अपने चारों भाइयों को बारी-बारी दाँव पर लगाकर हार गए। अंत में स्वयं को तथा द्रौपदी को भी गँवा बैठे। जीत के नशे में दुर्योधन ने द्रौपदी, जो पांचाल नरेश द्रुपद की पुत्री तथा पाँचों पाण्डवों की पत्नी थी, को दासी बनाकर घर के सभी कार्यों की जिम्मेदारी दे दी। द्रौपदी ने उसका आदेश मानना स्वीकार नहीं किया, दुर्योधन ने अपने छोटे भाई दुःशासन को द्रौपदी को घसीट कर राज्य दरबार में लाने का आदेश दिया। अनेक सम्माननीय वरिष्ठ महापुरुषों की उपस्थिति में गालियों से उसका अपमान किया गया तथा उसे निर्वस्त्र करने का प्रयत्न किया गया। भीम यह अत्याचार सहन नहीं कर सका। उसने प्रतिज्ञा की कि वह धृतराष्ट्र के सभी पुत्रों की हत्या करके दुःशासन का रक्तपान करेगा तथा दुर्योधन की जंघाएँ तोड़ेगा।

युधिष्ठिर, जो राजसूय यज्ञ का आयोजन करके सम्राट का पद ग्रहण कर चुके थे, को अपने भाइयों तथा पत्नी के साथ बारह वर्षों के लिए वनवास का दंड भोगना पड़ा। तेरहवें वर्ष में उनको अज्ञातवास भी करने को कहा गया। यह भी शर्त लगा दी गई कि यदि अज्ञातवास के काल में वे प्रकाश में आ गए तो फिर से बारह वर्ष का वनवास एवं अज्ञातवास करना होगा।

अज्ञातवास का तेरहवाँ वर्ष राजा विराट के राज्य में गुप्त रूप में सफलतापूर्वक बिताने के पश्चात् पाण्डवों ने जुए की पूर्व शर्त के अनुसार अपने राज्य की माँग की। स्वयं श्रीकृष्ण उनके दूत बनकर कौरवों के दरबार में गए। अपने अड़ियल स्वभाव के अनुरूप दुर्योधन ने श्रीकृष्ण की बातों पर ध्यान ही नहीं दिया। उसने सुई की नोक के बराबर धरती देने से भी स्पष्ट मना कर दिया। युद्ध ही अब एक मात्र उपाय रह गया।

दोनों पक्षों ने अपने मित्रों एवं संबंधियों के सहयोग से सेनाएँ जुटा लीं।

महाभयंकर युद्ध में दोनों पक्षों के अनगिनत सैनिक मारे गए। दुर्योधन, उसके सभी भाई, गुरुजन, संबंधी एवं मित्रगण मारे गए।

सत्ता की भूख और लालच ने दुर्योधन का पूर्णतः बीज नाश कर दिया। □

श्रीकृष्ण

महाभारत के केंद्रीय पात्र श्रीकृष्ण ने इस महान युद्ध में उत्प्रेरक (प्रेरणादायक) का कार्य किया।

यादव कुल के वंशज शूरसेन की एक सुंदर सुपुत्री थी, जिसका नाम पृथा था। उसके चचेरे भाई कुंतीभोज की कोई संतान नहीं थी। अतः कुंतीभोज ने अपने भाई की पुत्री पृथा को गोद ले लिया। अतः पृथा का नाम कुंती विख्यात हो गया। श्रीकृष्ण पृथा के भाई के सुपुत्र थे। अतः वे पाण्डवों के भाई (बुआ जी के पुत्र) थे।



इस कथा में द्रौपदी के विवाह के अवसर पर श्रीकृष्ण तथा उनके बड़े भाई बलराम को हम प्रथम बार एक साथ मिलते देखते हैं। वे दोनों भाई दर्शकों में बैठे थे, प्रतिस्पर्धियों में नहीं। कृष्ण और

पाण्डवों ने एक-दूसरे को प्रथम दृष्टि में ही पहचान लिया था। परन्तु जन-सामान्य में उन्होंने ऐसा प्रकट नहीं होने दिया।

जरासंध से पराजित होने पर श्रीकृष्ण ने अपनी राजधानी मथुरा से द्वारका में स्थानांतरित कर ली। द्वारका में उन्होंने समुद्र के किनारे एक भव्य किला बनवाया। उन्हें पाण्डवों के दुःखों के बारे में बहुत देर से पता चला - जुए में हारने तथा वनवासी होने के पश्चात्। श्रीकृष्ण के मन में बहुत पीड़ा हुई और उन्होंने स्वयं को शांति दूत के रूप में हस्तिनापुर जाने के लिए अपनी सेवाएँ समर्पित करने का प्रस्ताव रखा। वह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

संपूर्ण हस्तिनापुर श्रीकृष्ण के आने का समाचार सुनकर पुलकित (अत्यंत प्रसन्न) था तथा उनका भव्य स्वागत करने को उत्सुक था। परन्तु यह केवल बाहरी दिखावा था। धृतराष्ट्र अपने पुत्र-मोह के कारण कोई ठीक निर्णय लेने में सफल नहीं हुए। यद्यपि वह अनुभव करते थे कि दोनों पक्षों में स्थायी शांति ही भावी पीढ़ी की सुरक्षा के लिए आवश्यक है, परन्तु अपने पुत्र का विरोध करने का उनमें साहस नहीं था। भीष्म, द्रोण, कृप, विदुर आदि वरिष्ठों ने श्रीकृष्ण के पक्ष में तर्क दिये, परन्तु दुर्योधन तो जिद पर अड़ा हुआ था। राज-दरबार में श्रीकृष्ण तथा दुर्योधन के मध्य पर्याप्त तर्क-वितर्क चलता रहा। दुर्योधन ने तो पाण्डवों के जन्म की घटनाओं पर भी अपनी आपत्ति प्रकट की। योजनानुसार उसने श्रीकृष्ण को बंदी बनाने के लिए अपने भाई को आदेश दे दिया। परन्तु श्रीकृष्ण ने अपनी अलौकिक (दैवी) शक्ति से भीष्म, धृतराष्ट्र तथा विदुर के अतिरिक्त सभी को नींद के वशीभूत करा दिया।

श्रीकृष्ण के हस्तिनापुर से लौटने के पश्चात् दोनों पक्षों की ओर से युद्ध की तैयारी ने गति पकड़ ली।

दोनों पक्षों ने अपने-अपने मित्रों को युद्ध में अपनी सेना के साथ अपने पक्ष में मिलाने के तर्कपूर्ण प्रयत्न आरंभ कर दिये। श्रीकृष्ण के पास यादवों की बहुत बड़ी सेना थी। दुर्योधन सोचने लगा, यदि यादव सेना की सहायता मिल जाए तो आधी लड़ाई जीती गई समझी जाएगी। अतः इस हेतु उसने द्वारका के लिए रथ पर प्रस्थान किया। संयोग से अर्जुन तथा दुर्योधन एक ही उद्देश्य के लिए श्रीकृष्ण के पास साथ-साथ ही पहुँचे। श्रीकृष्ण नींद में थे। अर्जुन उनके चरणों की ओर करबद्ध खड़े होकर तथा दुर्योधन उनके सिर की ओर बैठकर उनके जागने की प्रतीक्षा करने लगे। जब श्रीकृष्ण ने आँखें खोलीं, उन्होंने अर्जुन को दुर्योधन से पहले देखा। दोनों से ही आने का कारण पूछने पर दोनों ने युद्ध में अपने पक्ष में खड़े होने की प्रार्थना की।

श्रीकृष्ण ने कहा, “आप दोनों ही भाई मेरे लिए अत्यंत सम्माननीय हैं। मेरी पूरी सेना किसी एक पक्ष में रहेगी तथा दूसरे पक्ष में मैं अकेला निःशस्त्र रहूँगा। मैं युद्ध नहीं करूँगा। आप दोनों निर्णय कर लें।”

दुर्योधन ने तुरंत उनकी सेना माँग ली। उसने सोचा एक अकेले निःशस्त्र व्यक्ति का क्या लाभ? इस प्रकार श्रीकृष्ण ने अर्जुन का सारथी बनने का प्रस्ताव रखा और अर्जुन ने सहर्ष स्वीकार कर लिया।

श्रीकृष्ण की रथ को दिशा देने की तज्ज्ञता (कुशलता) युद्ध में प्रबंधन की (मानवेत्तर) क्षमता तथा दूरदृष्टि के कारण पाण्डव सर्वनाश से बच गए।

उन्होंने भीम को जरासंध से बचाया तथा भीम को जरासंध का वध करने का ढंग भी समझा दिया। इस प्रकार युक्ति से जरासंध का वध करा दिया।

श्रीकृष्ण ने अर्जुन को समय-समय पर कर्ण से सावधानी पूर्वक बचाया तथा अनेक अवसरों पर उसकी जान बचायी।

केवल कृष्ण के सहयोग से ही पाण्डव विजयी हुए तथा उन्होंने अपना राज्य प्राप्त कर लिया। □

भीष्म

महर्षि वसिष्ठ के प्रति निरादर का अपराध करने के कारण आठ वसुओं को पृथ्वी पर मानव रूप में जन्म लेने का श्राप मिला। महर्षि ने कहा “आपमें से सात तो जन्म लेने के तुरंत पश्चात् लौट आयेंगे, परंतु आठवें वसु चिरकाल तक गौरव पूर्ण जीवन व्यतीत करेंगे। वसुओं ने माँ गंगा से प्रार्थना की कि वही उन सबकी जननी बनकर उन्हें जन्म के तुरंत बाद मुक्त करा दें। गंगा ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली।

एक दिन राजा शांतनु गंगा नदी के किनारे सैर कर रहे थे। उनकी भेंट एक अत्यंत रूपवती सुंदरी से हुई। उन्होंने अब तक ऐसी सुंदरता के बारे में न कभी सुना था, न कभी प्रत्यक्ष देखी थी। उनकी सभी इंद्रियाँ उसके रूप के जादू से उत्तेजित (बेकाबू) हो गई थीं। तुरंत वह उस मानवेत्तर सुंदरता के दास हो गए। उन्होंने सच्चे मन से प्रार्थना की कि वह उनकी पत्नी बनना स्वीकार करे, उसने अपनी स्वीकृति तो दे दी परंतु एक शर्त रखी कि राजा कभी भी उसके किसी भी कार्य पर आपत्ति नहीं करेंगे और कभी यह भी नहीं पूछेंगे कि “मैं कौन हूँ, कहाँ से आई हूँ अथवा किस उद्देश्य से यहाँ आई हूँ?” प्रेम के वशीभूत होकर राजा ने जल्दबाजी में उसकी सभी शर्तें स्वीकार करके उससे विवाह कर लिया। वे प्रसन्नतापूर्वक सुखी दाम्पत्य जीवन बिताने लगे। गंगा ने क्रमशः

आठ पुत्रों को जन्म दिया। सात बार, बच्चे को जन्म देते ही वह उसे नदी में बहा कर प्रसन्न चित्त से घर लौट आती। यद्यपि राजा अत्यंत भयभीत हो जाते थे, परंतु कभी अपनी प्रतिज्ञा (वचन) तोड़ने की हिम्मत नहीं जुटा पाये।



परंतु जब गंगा आठवें पुत्र को लेकर जाने लगी, राजा ने उसे रोक लिया। गंगा ने कहा "आपने समझौता भंग किया है, अब हमें अलग होना ही होगा। मैं इस शिशु को अपने साथ ले जाऊँगी,

इसका लालन-पालन करूँगी तथा इसे सब तरह के ज्ञान-विज्ञान में पारंगत करके इसे आपको सौंप जाऊँगी।" ऐसा कहकर वह पुत्र के साथ अदृश्य हो गई।

शांतनु के वह पुत्र देवव्रत थे। वे भीष्म के नाम से विख्यात हुए।

गंगा के जाने की दुःखदायी घटना से शांतनु का जीवन एकांगी तथा नीरस हो गया। बीतते समय के साथ देवव्रत सभी प्रकार के ज्ञान-विज्ञान, विशेष रूप से सामरिक विद्या में तज्ञ (निपुण) हो गए। सोलह वर्ष की आयु के होने पर महाराज ने उन्हें युवराज घोषित कर दिया।

एक दिन शांतनु एक दुर्लभ सुगंध से मंत्रमुग्ध से हो गए। खोज करने पर उन्हें पता चला कि मल्लुआरों के प्रमुख की एक कन्या इस सुगंध का कारण (माध्यम) थी। उसका नाम सत्यवती था। उसकी अनुपम सुंदरता ने उन्हें बेबस कर दिया। उस कन्या से विवाह का प्रस्ताव उन्होंने उसके पिता के पास भिजवाया। मल्लुआरों का मुखिया इस प्रस्ताव से अत्यंत आनंदित हुआ। परंतु उसने विवाह की एक शर्त रखी। शर्त थी कि सत्यवती का पुत्र ही उस राज्य का राजा बनेगा।

शांतनु ने यह शर्त स्वीकार नहीं की क्योंकि वह देवता के समान अपने पुत्र देवव्रत को धोखा नहीं देना चाहते थे। शांतनु असफल प्रेमी के नाते दुखी मन से घर लौटे। देवव्रत को जब पूरी घटना का पता चला, वह स्वयं सत्यवती के पिता के पास गए। सत्यवती के पिता की शर्त मानने का आश्वासन देकर सत्यवती को अपने पिता के

लिए घर ले आए। उन्होंने यह प्रतिज्ञा भी कर ली कि वह आजन्म ब्रह्मचारी रहेंगे ताकि उनके पिता की कामना पूर्ण हो। इसी भीषण (भीष्म) प्रतिज्ञा के कारण वह भीष्म के नाम से विख्यात हो गए।

युद्ध में चित्रांगद की मृत्यु के पश्चात् विचित्रवीर्य, जो अभी किशोरावस्था के भी नहीं हुए थे, को अप्रत्यक्ष रूप से युवराज बनाकर भीष्म उनके स्थान पर राज्य कार्य संभालने लगे।

भीष्म ने सुना कि काशी नरेश की तीन कन्याओं अम्बा, अम्बिका तथा अम्बालिका के लिए स्वयंवर की व्यवस्था की जा रही है।

भीष्म विचित्रवीर्य के लिए पत्नी ढूँढ़ ही रहे थे। तुरंत वह काशी के लिए रवाना हुए। सभी ख्याति प्राप्त राजकुमार काशी पहुँच चुके थे क्योंकि सबने तीनों की योग्यता एवं सुंदरता की प्रशंसा सुनी थी।

भीष्म को वहाँ स्वयंवर में प्रतिस्पर्धी के रूप में समझकर वहाँ बैठे सभी राजकुमार भीष्म को कोसने लगे। भीष्म ने उन सभी को सीधे युद्ध के लिए ललकारा। अकेले महारथी भीष्म ने सबको हरा दिया तथा तीनों कन्याओं का हरण करके उन्हें हस्तिनापुर ले आये। विवाह की तैयारी आरंभ हो गई।

तीनों बहनों में सबसे बड़ी बहन अंबा सुबाला के राजा साल्व से प्रेम करती थी। स्वयंवर के समय भीष्म ने साल्व को भी पराजित किया था। अंबा ने भीष्म के पास जाकर स्वयं ही उन्हें इस तथ्य से अवगत कराया (सच्चाई की जानकारी दी)। भीष्म ने उचित सुरक्षाकर्मियों के साथ उसे साल्व के पास भिजवा

दिया। विचित्रवीर्य का दोनों बहनों के साथ बड़ी धूम-धाम से विवाह हो गया।

परंतु साल्व ने अंबा को अस्वीकार कर दिया। अतः हस्तिनापुर लौटकर उसने भीष्म से विवाह के लिए प्रार्थना की। परंतु भीष्म ने अपनी प्रतिज्ञा उसे बताकर अपनी विवशता समझाने का प्रयत्न किया। इस प्रकार अपमानित एवं निराशापूर्ण जीवन देखकर अम्बा ने भीष्म से बदला लेने की ठानी।

भगवान सुब्रमण्यम को प्रसन्न करने के लिए उसने घोर तपस्या की। सुब्रमण्यम उसकी साधना से प्रसन्न होकर उसके सम्मुख प्रकट हुए। उन्होंने उसे कमल की एक ऐसी माला दी, जिसके फूल सदा ही ताजे रहेंगे, मुरझाएँगी नहीं। उन्होंने कहा “इस माला को पहनकर भीष्म से युद्ध करने वाला अवश्य विजयी होगा। अतः माला को लेकर वह समकालीन सभी वीर योद्धाओं एवं राजाओं के पास गई, परंतु भीष्म से लोहा लेने की हिम्मत किसी में नहीं थी। अतः उसने वह माला राजा द्रुपद के राज्य के प्रवेश द्वार पर लगा दी। तब उसने महादेव शिव की उपासना करनी आरंभ की। संतुष्ट होकर शिव ने प्रकट होकर उसे शुभाशीष दिया कि अगले जन्म में वह भीष्म से बदला ले सकेगी। स्वाभाविक मृत्यु तक धैर्य न रख पाने के कारण अंबा ने आत्मदाह कर लिया। बाद में राजा द्रुपद के यहाँ शिखंडी के रूप में उसका पुनर्जन्म हुआ। यही शिखंडी महान धनुर्धारी के रूप में विख्यात होने लगा। एक दिन शिखंडी ने प्रवेश द्वार पर ताजे कमल फूलों की माला देखी। उसने वह माला वहाँ से उतारकर पहन ली।

कौरव-पाण्डवों (महाभारत) के युद्ध में भीष्म कौरवों के सेनापति थे। उन्होंने प्रथम दस दिन में पाण्डव सेना को अत्यधिक क्षति (हानि) पहुँचाई। दसवें दिन ही अर्जुन ने शिखंडी के पीछे खड़े होकर भीष्म पर आक्रमण किया। भीष्म को ज्ञात था कि अंबा ने ही शिखंडी के रूप में पुनर्जन्म लिया है। अतः अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार नारी पर आक्रमण नहीं किया। (बाण नहीं चलाये)। अतः उनके शरीर पर अर्जुन तथा शिखंडी के बाणों की वर्षा होती रही और अंत में वे भूमि पर शर-शैय्या पर गिर गए। सभी ने उनकी मृत्यु पर शोक व्यक्त किया।

भीष्म कौरवों तथा पाण्डवों को समान रूप से प्यार करते थे। उन्होंने युद्ध टालने के भरसक प्रयत्न भी किये। □

द्रोणाचार्य

आचार्य भारद्वाज एवं राजा पांचाल मित्र थे। उनके सुपुत्र द्रोण तथा द्रुपद भी एक ही आश्रम के सहपाठी एवं मित्र थे। द्रोण ने वेद और वेदांत के औपचारिक पाठ्यक्रम के साथ-साथ तत्कालीन अन्य शस्त्र-शास्त्रों की विद्या विशेष रूप से सामरिक विद्या में निपुणता प्राप्त कर ली थी। आश्रम में शिक्षा ग्रहण करते-करते द्रोण के मित्र राजकुमार द्रुपद ने मित्रता के उत्साह में द्रोण को वचन दिया कि राजा बनने पर वह आधा राज्य द्रोण को दे देंगे।

अध्ययन के पश्चात् द्रोण ने कृपाचार्य की बहन से विवाह कर लिया। उनके यहाँ अश्वत्थामा नाम का पुत्र हुआ। द्रोण अत्यंत निर्धनता में अपना जीवन व्यतीत कर रहे थे। उन्होंने सुना कि परशुराम अपनी सारी संपत्ति दान कर रहे हैं। उन्होंने भी अपना भाग्य बदलने का विचार किया। परंतु जब वह परशुराम जी के यहाँ पहुँचे, तब तक वह अपनी सारी संपत्ति दान कर चुके थे। अतः परशुराम जी ने द्रोण को शस्त्रविद्या में निपुण करने का प्रस्ताव रखा। परशुराम महादेव शिव के शिष्य थे। धनुर्विद्या में वह पूर्ण तज्ञ थे। उनके जैसा उस समय अन्य कोई धनुर्धर नहीं था। द्रोण प्रसन्नता पूर्वक उनसे धनुर्विद्या सीखकर निपुण हो गए।

द्रोण को स्मरण था कि द्रुपद ने राजा बनने पर उनकी सहायता का वचन दिया था। अतः पर्याप्त मात्रा में दान की अपेक्षा से वह



राजा द्रुपद के यहाँ पहुँचे। उनकी आशा के विपरीत द्रोण का घोर अपमान किया गया। द्रुपद ने कहा “एक राजा और एक भिखारी में मित्रता कहाँ संभव है? अतः द्रोण के मन में बदले की आग जलती रही। सभी शस्त्रों के विशेषज्ञ भीष्म पाण्डवों तथा कौरवों को शस्त्र विद्या सिखाते रहे। कृपाचार्य उनके कुलगुरु थे। अतः वह भी कौरवों व पाण्डवों को शस्त्र विद्या सिखाने में सहायता

करते थे, क्योंकि भीष्म धृतराष्ट्र को राज्य-कार्य संभालने में सहायता करने के लिए पर्याप्त समय देते थे।

एक दिन द्रोणाचार्य अपने साले कृपाचार्य से मिलने के लिए उनके निवास पर गए। भीष्म ने सभी राजकुमारों को शस्त्र विद्या सिखाने के लिए आचार्य के नाते द्रोण की नियुक्ति कर दी। अतः द्रोण को अपनी आजीविका चलाने का उत्तम साधन प्राप्त हो गया। कुछ दिनों की शिक्षा के पश्चात् द्रोण को अर्जुन की ग्रहण शक्ति की क्षमता का अनुमान हो गया। अतः उन्होंने अर्जुन की ओर विशेष ध्यान देना आरंभ किया। दिन-रात के अभ्यास व परिश्रम के फलस्वरूप अर्जुन तत्कालीन (उस समय के) श्रेष्ठतम धनुर्धारी बन गए। द्रोण ने अपने महान शिष्य अर्जुन को राजा द्रुपद को युद्ध में हराकर बंदी बनाकर लाने का आदेश दिया। अर्जुन ने अपने गुरु के आदेश का तुरंत पालन किया तथा अति सरलता से बंदी द्रुपद को आचार्य के सामने प्रस्तुत किया। द्रोण ने द्रुपद से कहा, “द्रुपद, अब तुम मेरे दास हो। परंतु मैं तुम्हारा अपमान नहीं करना चाहता, अब तुम मेरे मित्र रहकर तुम अपने राज्य के आधे भाग पर ही राज्य करोगे। अब हम समान स्तर के मित्र हुए। इस प्रकार द्रोणाचार्य ने द्रुपद के गर्व (स्वाभिमान) को चोट पहुँचायी।

अतः द्रुपद द्रोण से अपमान का बदला लेने के उचित (उपयुक्त) अवसर की प्रतीक्षा करने लगा। अर्जुन द्रुपद की पुत्री द्रुपदी को स्वयंवर में जीत कर ले गए। इस प्रकार वह राजा द्रुपद के दामाद बन गए। महाभारत के युद्ध में द्रुपद के पुत्र धृष्टद्युम्न पाण्डवों के सेनापति नियुक्त हुए। धृष्टद्युम्न ने ही आचार्य द्रोण का

वध किया। इस प्रकार द्रुपद को अपने अपमान का बदला चुकाने की प्रसन्नता हुई।

भीष्म के पश्चात् आचार्य द्रोण कौरव सेना के सेनापति नियुक्त किए गए। युद्ध कला में व्यूह रचना में उन्हें आश्चर्यजनक कुशलता प्राप्त थी। उनकी इस कुशलता के कारण शत्रु-सेना को महान क्षति (हानि) हुई। द्रोण यदि अर्जुन को युद्ध स्थल से दूर जाने के लिए विवश न करते और दुर्योधन को ठीक समय पर उचित परामर्श न देते तो अभिमन्यु का वध असंभव होता। युद्ध से पूर्व द्रोण ने धृतराष्ट्र और दुर्योधन को सलाह दी थी कि वे युधिष्ठिर को उसका राज्य लौटाकर शांति संधि कर लें। परंतु लाचार होकर उनकी ओर से उन्हें भी युद्ध में भाग लेना पड़ा। □

विदुर

विदुर पाण्डु तथा धृतराष्ट्र के सौतेले भाई थे (सौतेली माता के पुत्र)। वह धृतराष्ट्र के प्रधानमंत्री थे।

खरी-खरी बात कहने तथा दूर दृष्टि एवं न्याय प्रियता के गुणों के कारण वह विख्यात थे तथा सदा धर्म का पक्ष लेते (साथ देते) थे। वह दुर्योधन, कर्ण व शकुनि के षड्यंत्रों का सदा ही दृढ़ता पूर्वक विरोध करते थे। वे महान विद्वान एवं नीतिज्ञ थे। वे सदा सद् परामर्श (ठीक सलाह) ही देते थे। वे एक महान दार्शनिक के रूप में विख्यात थे। संकट एवं दुविधा की परिस्थिति में भीष्म भी उन्हीं से परामर्श करते थे (सलाह लेते थे)। राजा भी चिंता एवं निद्राहीन रातें बिताने पर विदुर को ही समस्याएँ सुलझाने के लिए बुलवाते थे।

उनकी प्रत्येक भविष्य वाणी सत्य सिद्ध होती थी। परंतु राजा या उनके पुत्रों में से कोई भी उनकी नेक सलाह नहीं मानते थे। सदा विनाश की भविष्यवाणी करने के कारण दुर्योधन उनसे घृणा करता था। विदुर ने भी युद्ध रोकने के भरसक प्रयत्न किए।

विदुर की दूरदृष्टि, सतर्कता एवं सावधानी के कारण ही पाण्डव लाक्षागृह के षड्यंत्र से सकुशल निकल आये।

धृतराष्ट्र के पुत्रों, मित्रों और संबंधियों ने षड्यंत्र करके पाण्डवों



को जीवित जलाने के लिए लाक्षागृह (लाख जैसी अन्य आग पकड़ने वाले रसायनों से बना हुआ भवन) बनवाया और उन्हें उस भवन में रहने के लिए प्रार्थना की। विदुर ने अपनी कुशलता से इस षड्यंत्र को पहचान कर उसे असफल भी कर दिया। लाक्षागृह में प्रवेश से पूर्व ही युधिष्ठिर को चेतावनी दे दी थी और सदा सतर्क और सावधान रहने को कहा "जो लोग दुष्ट शत्रु की चालों को

समझने की समझ रखते हैं, केवल वे ही संकटों से बचते हैं। शस्त्र जस्ते से भी कठोर धातु से बनाये जाते हैं। एक समझदार व्यक्ति संकटों से बच सकता है, यदि उसे बचने के साधन पता हों। जंगल की आग बिल में रहने वाले चूहे का कुछ नहीं बिगाड़ सकती। बुद्धिमान व्यक्ति सितारों को देखकर ही अपना परिणाम (भविष्य) समझ लेता है।" इस प्रकार सांकेतिक भाषा में विदुर ने अपेक्षित संकट तथा उससे बचने के उपाय बता दिये।

लाक्षागृह में आग लगने से पर्याप्त समय पूर्व ही विदुर ने वहाँ एक सुरंग बनाने वाले कुशल कारीगर को भिजवाकर युधिष्ठिर से भेंट करके भावी संकट तथा बचाव के लिए सुरंग की सारी योजना समझा दी। यदि विदुर युधिष्ठिर को संकट की पूर्व सूचना एवं बचाव के लिए सहायता न करते, तो पाण्डवों का बचना असंभव होता।

मांडव्य ऋषि यौगिक शक्ति एवं ध्यान-शक्ति के धनी थे। वे वन में रहकर योग-साधना में लीन रहते। एक बार कुछ डाकू लूट का माल छिपाने के लिए, उनकी कुटिया के पास पहुँचे। ऋषि को ध्यानमग्न देखकर वे सारा खजाना कुटिया में छिपाकर चले गए। सिपाही डाकुओं के पदचिन्हों का पीछा करते हुए, वहाँ पहुँचे। साधना मग्न ऋषि से उनके प्रश्नों के उत्तर न पाकर वे कुटिया में चले गए। लूट का खजाना पाकर उन्होंने ऋषि को ही डाकू समझ लिया। उन्होंने राजा के पास पहुँचकर सब कुछ बताया।

राजा ने भी ऋषि मांडव्य को ही दोषी मानकर उन्हें लोहे के पिंजरे में कैद करने का आदेश दिया। ध्यानमग्न ऋषि को सिपाही

पिंजरे में कैद करके आ गए। कई महीनों तक ऋषि ध्यानमग्न रहकर जीवित रहे। निकट के सभी ऋषिगण उनके चारों ओर एकत्रित होने लगे। समाचार भयभीत राजा के पास पहुँचा। राजा शीघ्र ही उनके पास पहुँचे तथा उनसे क्षमा-याचना की। ऋषि ने यह कहकर कि “यही मेरी नियति होगी, आप, परेशान न हों” राजा को शांत किया।

ऋषि यमराज के यहाँ पहुँचे तथा उनसे पूछा, “यम देव! मुझे इतना बड़ा दंड किस अपराध के कारण दिया गया है?” यमराज ने उत्तर दिया “आपने एक मधुमक्खी को अकारण ही कष्ट दिया था। मांडव्य ऋषि ने पूछा कि यह कब की घटना है। उत्तर मिला, “जब आप चार वर्ष की आयु के थे।”

ऋषि इस विचित्र उत्तर को सुनकर चकित हो गए। उन्होंने कहा, “हे न्यायाधीश यमराज! यह दंड तो न्याय संगत नहीं है, क्योंकि बारह वर्ष की आयु से पूर्व किया गया कोई पाप कर्म पाप की श्रेणी में नहीं आता। इस तथ्य की उपेक्षा करके आपने मुझे कठोर दंड दिया। मैं तुम्हें श्राप देता हूँ कि तुम मृत्युलोक (पृथ्वी पर) में जाकर मानव के रूप में जन्म लो।”

ऐसा कहा जाता है कि ऋषि के श्राप के फलस्वरूप यमराज ने विदुर के रूप में जन्म लिया। □

कर्ण

“अधर्म से कमाया धन व्यर्थ में ही खर्च हो जाता है।” कर्ण की कथा से हम यह सीख ले सकते हैं। कर्ण बहुत दानशील था। वह अर्जुन तथा भीष्म की श्रेणी में गिना जाने वाला महायोद्धा था। पर कुसंगति एवं दुर्भाग्य ने उसके जीवन को अर्थहीन बना दिया।

कुंती से उत्पन्न प्रथम पुत्र कर्ण के जन्म, उत्थान, पतन एवं मृत्यु की कथा रूलाने वाली है।

एक बार ऋषि दुर्वासा राजा कुंतीभोज के यहाँ अतिथि के रूप में पधारे। वह वहाँ अल्प अवधि के लिए रुके। राजा की गुणशीला सुंदरी पुत्री कुंती ने उनकी सेवा तथा स्वागत पूर्ण श्रद्धापूर्वक की। संतुष्ट होकर ऋषि ने उसे अलौकिक मंत्र दिया और कहा “यदि इस मंत्रोच्चार के साथ किसी देवता को स्मरण करोगी, वह तुरंत प्रकट होंगे और पुत्र प्राप्ति का वर दे जायेंगे।” मंत्र देकर उन्होंने प्रस्थान किया।

किशोर अवस्था में निष्पाप वृत्ति से कुंती ने एक दिन सूर्योदय की स्वर्णिम रश्मियों (सुनहरी किरणों) से आकर्षित होकर सूर्य देव का स्मरण करके मंत्र का उच्चारण किया। तुरंत सूर्य देव दिव्य प्रकाश के साथ प्रकट हुए तथा उसे दिव्य कवच एवं कुंडल युक्त पुत्र दे गए।

अविवाहित होने के कारण लोक-लाज के भय से आतंकित होकर उसने बालक को एक बक्से में बंद करके नदी में छोड़



दिया। अधीरथ नामक एक सारथी (रथवान) ने उस तैरते हुए बक्से को देखा और उठाकर खोल लिया। सुंदर एवं अलौकिक बच्चे को देखकर उसके आश्चर्य एवं प्रसन्नता का पारावार न रहा। उसकी अपनी कोई संतान नहीं थी। इसलिए उसने उसे अपने पुत्र के रूप में अपना लिया। उसका नाम कर्ण रख दिया।

कौरवों एवं पाण्डवों की औपचारिक शिक्षा पूर्ण होने पर आचार्य कृप एवं आचार्य द्रोण ने अपने शिष्यों की कुशलता की परीक्षा का दिन निश्चित कर दिया। राज्य परिवार के अतिरिक्त समाज की अपार जन-शक्ति वहाँ उपस्थित थी। अर्जुन सभी परीक्षाओं में सर्वोत्तम घोषित किए गए। अतः दुर्योधन के मन में ईर्ष्या व घृणा के भाव अधिक गति से जागृत हो गए।

कार्यक्रम के अंत में प्रवेश द्वार पर वज्राघात जैसी कठोर व तीव्र ध्वनि सुनाई दी। एक दिव्य व्यक्तित्व वाला तरुण योद्धा सामने आया। उसने ताली बजाकर अर्जुन को चुनौती दी। यह तरुण कर्ण था। अपने प्रथम पुत्र को देखकर कुंती उसे कवच-कुण्डलों के कारण पहचान गई। इस अनपेक्षित विकराल परिस्थिति में कुंती गिरकर अचेत हो गई।

कर्ण ने अर्जुन द्वारा दर्शायी गई सभी कुशलताओं का सरलता से प्रदर्शन कर दिखाया। यह देखकर दुर्योधन अत्यंत प्रसन्न हो गया। उसने उसको गले लगाकर आजीवन मित्रता का आश्वासन दिया। दुर्योधन ने उसे उसी समय अंग देश (प्रदेश) का राजा भी घोषित कर दिया। उसके बाद कर्ण ने अर्जुन को परस्पर युद्ध के लिए चुनौती दी। दोनों आचार्य इस दृश्य से भयभीत एवं शंकात

हो गए। उन्होंने इस स्पर्धा को टालने के लिए कर्ण को अपने वंश का परिचय देने के लिए कहा। उसी समय अधीरथ वहाँ पहुँचा और उसने कर्ण को 'पुत्र' कहकर संबोधित किया। पिता-पुत्र परस्पर गले भी मिले।

भीम को कर्ण के वंश का पता चलते ही वह एकदम दहाड़ा तथा उसको फटकारते हुए बोला कि "तुम अर्जुन से युद्ध करने के लिए उपयुक्त पात्र नहीं हो। तुम अपने वंश के कार्य के अनुरूप घोड़ों की लगाम सँभालो।"

कर्ण परशुराम के आश्रम में ब्राह्मण के छद्मवेश में उनसे उच्च स्तरीय शस्त्रविद्या सीखने के लिए पहुँचा। परशुराम जी ने उसे शिष्य के रूप में स्वीकार कर लिया। कर्ण ने अपने अनुशासन एवं सीखने में लगन एवं तन्मयता के गुणों के कारण शीघ्र ही गुरुदेव को प्रसन्न कर लिया एवं उनसे ब्रह्मास्त्र जैसा महत्वपूर्ण अस्त्र प्राप्त कर लिया।

एक दिन गुरुदेव कर्ण की जाँघ पर सिर रखकर विश्राम (नींद) कर रहे थे। अचानक एक तीक्ष्ण डंक वाले कीड़े ने कर्ण की जंघा पर डंक मार दिया। कर्ण को असहनीय पीड़ा हुई तथा जंघा से रक्त धारा बहकर नीचे की ओर बहने लगी। परंतु कर्ण इस भाव से कि गुरुदेव के विश्राम में विघ्न न पहुँचे, बिना हिले-डुले कष्ट को सहन करते हुए बैठा रहा। कुछ देर बाद नींद खुलने पर गुरुदेव सारी परिस्थिति समझ गए। उन्होंने क्रोधित होकर कर्ण से कहा कि वह ब्राह्मण-पुत्र नहीं है। उसे उन्होंने सत्य बताने को कहा। वह तो क्षत्रिय वंश से है। परशुराम जी क्षत्रिय-विरोधी थे। अतः

उन्होंने कर्ण को श्राप दिया कि अत्यंत आवश्यकता के समय उसे उनसे सीखी हुई सारी विद्या का विस्मरण हो जायेगा। दुर्योधन के जिद्दी स्वभाव का मूल कारण भी कर्ण ही था।

कर्ण को मित्र एवं राजा घोषित करके दुर्योधन उसको उपकृत (उपकार) कर चुका था। अतः कृतज्ञता की भावना के वशीभूत होकर कर्ण-दुर्योधन के लिए कुछ भी करने के लिए सदा तत्पर (तैयार) रहता था। शकुनि, दुर्योधन और दुःशासन की कुसंगति में फँसकर द्रोपदी को भरी सभा में अर्ध नग्न या पूर्ण नग्न करने के षड्यंत्र में वह भी सम्मिलित हो गया।

अन्यथा कर्ण दानवीर एवं महान व्यक्तित्व का धनी था। किसी के माँगने पर वह कुछ भी दान कर सकता था, यह उसकी प्रतिज्ञा थी। इसी दान-वृत्ति का अनुचित लाभ उठाकर इंद्रदेव ने अपने पुत्र अर्जुन की कर्ण से युद्ध में जान बचाने के उद्देश्य से धोखे से ब्राह्मण वेश में उसके कवच-कुंडल ही माँग लिए। कर्ण ने सहर्ष कवच-कुंडल शरीर से काटकर दान कर दिए।

युद्ध आरंभ होने वाला था। कुंती कर्ण के पास गई और उससे पांडवों के पक्ष में युद्ध करने का आग्रह किया क्योंकि वह कुंती का ज्येष्ठ पुत्र तथा पाण्डवों का ज्येष्ठ भ्राता था। यह सुनकर कर्ण दंग रह गया। कुंती ने उसे उसके जन्म की घटना बताकर बार-बार उसे अपने साथ ले जाने का प्रयत्न किया। कर्ण ने मुस्करा कर उत्तर दिया कि ऐसे समय में दुर्योधन का साथ छोड़ना अधर्म होगा। दुर्योधन ने ही तो कठिन परिस्थितियों में उसका साथ दिया था। तथा अंत में कहा कि उसका साथ छोड़कर वह संसार में

कायर कहलाएगा। परंतु उसने अपनी माता को एकदम निराश व खाली हाथ नहीं लौटाया। वह बोला, “माता! यद्यपि आपने अपनी विकट परिस्थिति के कारण मुझे जन्म देते ही त्याग दिया, मैं आपको निराश नहीं लौटने दूँगा। मैं केवल अर्जुन से ही युद्ध करूँगा। यदि अर्जुन का वध हो गया, तो मैं पाण्डवों के साथ मिल जाऊँगा। उस स्थिति में भी आपके पास पाँच पुत्र ही होंगे।”

कर्ण-अर्जुन के युद्ध में भाग्य ने कर्ण का साथ नहीं दिया। उसका सारथी साल्व था। साल्व कर्ण को भला-बुरा कहता रहा। उसे डाँटता रहता तथा उसे ताने मारता रहता। उसका उद्देश्य कर्ण का मनोबल गिराना था। अंत में कर्ण अर्जुन के बाणों से घायल होकर भूमि पर गिर गया। उसके प्राण पखेरू उड़ गये (वह मर गया)। □

युधिष्ठिर

युधिष्ठिर पांडवों में सबसे बड़े भाई थे। धर्मराज युधिष्ठिर के नाम से विख्यात थे। वे एक सरल चित्त तथा शांति प्रिय व्यक्ति थे। कुछ लोग उनकी शांति-प्रियता को कायरता मानते थे। उनके धैर्यशील एवं क्षमावान् स्वभाव के कारण उन्हें बहुत कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। (बहुत बड़ा मूल्य चुकाना पड़ा)।

जब अर्जुन ने अपने बल पर द्रोपदी का वरण कर लिया (स्वयंवर में जीत लिया), युधिष्ठिर की धर्म की संकल्पना, जो अब तक कभी सुनी नहीं गई थी, के कारण द्रोपदी को भाइयों की एकता के नाम पर, पाँचों की पत्नी बनकर रहना पड़ा। द्रोपदी जब युधिष्ठिर के साथ पत्नी के रूप में होती तो सभी के लिए माँ समान होती। कितनी विडंबना है कि इन्हीं पाँच भाइयों की पत्नी को अर्ध नग्न अवस्था में घसीटा जा रहा था, भीम ने प्रतिकार करने का प्रयत्न किया। तो धर्म के नाम पर (क्योंकि वे सब जुए में हारकर दुर्योधन के दास बन चुके थे) युधिष्ठिर ने शांत कर दिया।

युधिष्ठिर जुए के निमंत्रण को अस्वीकार कर सकते थे, खेल में इस बात पर अड़ सकते थे कि खेल सीधा दुर्योधन के साथ खेला जाएगा। यदि दुर्योधन के स्थान पर अन्य व्यक्ति खेलने के लिए नियुक्त किया गया था, तो वे भी अपने स्थान पर किसी अन्य अधिक अनुभवी व्यक्ति को नामित कर सकते थे। इस जुए के

खेल में युधिष्ठिर अपना सर्वस्व, अपना राज्य व संपत्ति, सभी भाइयों, स्वयं को, यहाँ तक कि अपनी पत्नी को हार गए तथा उन्हें खेल की शर्त के अनुसार वनवास का दंड भुगतना पड़ा।



आत्म-ग्लानि की भावना से पीड़ित होकर धृतराष्ट्र ने उन्हें उनका खोया हुआ राज्य एवं सर्वस्व लौटा दिया। एक बार जुए के दुष्परिणाम भुगतने के बाद भी उन्होंने उसी दिन, उसी समय उसी धोखेबाज टोली के साथ पुनः जुआ खेलना स्वीकार कर लिया। कोई भी सूझ-बूझ वाला व्यक्ति ऐसा नहीं करता, परन्तु युधिष्ठिर ने ऐसा ही किया।

जब पांडव वनवास के कष्ट सहन कर रहे थे, सैधव नरेश जयद्रथ वहाँ आया। अकस्मात् उसने द्रोपदी को देखा। उसकी सुंदरता पर वह मुग्ध हो गया। उसने छल से द्रोपदी का अपहरण कर लिया। बाद में उसे ढूँढकर, उसे युद्ध में हराकर उसे बंदी बना लिया गया। उसे मृत्यु दंड देने के स्थान पर यह कहकर कि जयद्रथ उनकी चचेरी बहन (कौरवों की बहन) दुशाला का पति है, उसे क्षमादान देकर मुक्त कर दिया गया। जयद्रथ को मुक्त करने की मूर्खता का परिणाम उन्हें युद्ध में भुगतना पड़ा। जयद्रथ ने ही पांडवों के पुत्र महारथी अभिमन्यु का छलपूर्ण ढंग से वध कर दिया।

दुर्योधन पाण्डवों को वनवास काल में होने वाले कष्टों को अपनी आँखों से देखकर आनंदित होना चाहता था। अतः वह अपनी सेना लेकर जंगल की ओर चल पड़ा। मार्ग में गंधर्व डेरा डाले हुए थे। गंधर्वों के साथ दुर्योधन की सेना को युद्ध करना पड़ा। गंधर्वों ने सेना का विनाश कर दिया और दुर्योधन को बंदी बना लिया। युधिष्ठिर को इस घटना का पता चलने पर उन्होंने अपने भाइयों को दुर्योधन को मुक्त कराने का आदेश दिया। यह

एक और बड़ी गलती थी।

अंत में जब वह स्वयं भी सत्ता के लिए लालायित हो गए तो उन्होंने स्वयं अपने ही मुख से बहुत बड़ा अधर्म का कार्य किया। उन्होंने अपने गुरु के सामने जानबूझ कर असत्य बोला कि “अश्वत्थामा मारा गया है” इस असत्य को सत्य समझकर द्रोण निश्चेष्ट एवं स्तब्ध हो गए (मूर्ति के समान) उन्होंने युद्ध क्षेत्र में ही समाधि लगा ली। तब धृष्टद्युम्न ने उन पर आक्रमण करके उनका शीश काट दिया। युधिष्ठिर का यह कृत्य (कर्म) किसी अन्य के द्वारा की गई हत्या ‘गुरु हत्या’ जैसा पापपूर्ण कृत्य था। □

भीम

भीम माता कुंती एवं पाण्डवों की जीवन रक्षा के लिए महान स्तंभ के समान थे। उन्होंने अपने जीवन में अनेक चुनौतियों एवं मुसीबतों (रुकावटों) का सामना करके उन पर सफलतापूर्वक विजय पाई। भीम एक बढ़िया रसोइया थे। उन्हें भूख भी बहुत लगती थी। अतः वे बहुत अधिक मात्रा में भोजन करते थे। शारीरिक शक्ति एवं क्षमताओं में उनके समान अन्य कोई योद्धा नहीं था। वह एक उत्तम तैराक थे। मल्लयुद्ध में भी उनके समान कोई नहीं था। अतः वे समय-समय पर कौरवों को आघात पहुँचाते रहते थे। कौरवों की भीम से अनंत ईर्ष्या के अनेक कारणों में से यह भी एक बहुत बड़ा कारण था।

लाक्षागृह से सुरक्षित निकल जाने के बाद कुंती और उनके पुत्रों ने एकचक्र नगरी में एक ब्राह्मण के घर शरण ली। वे वहाँ ब्राह्मण-वेश में रहे। वे ब्राह्मणों की गलियों में ही भिक्षा लेने के लिए जाते थे।

एकचक्र नगरी का शासक दुर्बल था अतः वहाँ बकासुर नामक दैत्य का आतंक था। वह एकचक्र से मीलों दूर एक गुफा में रहता था। वहाँ की यह परंपरा बन गई थी कि प्रतिदिन एक परिवार बकासुर के लिए भोजन पहुँचाया करेगा। उसका भोजन “कई क्विंटल चावल, दाल, दही, मांस, शराब, सामान लाने वाली गाड़ी के दो पशु

तथा उसका चालक" के रूप में होता था। एक दिन उस परिवार की बारी आई, जिनके घर में पाण्डवों ने शरण ली हुई थी। भीम ने भोजन



पहुँचाने का दायित्व स्वयं ही ले लिया। भीम खाने का सामान लेकर देर से पहुँचा। बकासुर गुफा के बाहर भूख से बेचैन बड़े क्रोध की अग्नि से जल रहा था। भीम को देर से व धीरे-धीरे आते देखकर उसका क्रोध बढ़ गया। भीम ने उसके क्रोध की उपेक्षा करते हुए (चिंता न करते हुए) गाड़ी को रोका और स्वयं ही उसमें रखा भोजन खाने लगा। बकासुर अपने क्रोध पर काबू नहीं रख सका। उसने एक पेड़ उखाड़ कर भीम पर आक्रमण कर दिया। फिर भी भीम निश्चिंत होकर भोजन करता रहा। भोजन करके संतुष्ट होने पर उसने बकासुर से युद्ध आरंभ किया।

एक भयानक दृश्य उपस्थित हुआ। भीम ने राक्षस को नीचे गिराकर अपने घुटने से उसकी पीठ की हड्डियाँ तोड़ दीं। बकासुर भयंकर रूप से दर्द से चीखा, खून की उल्टी करके उसके प्राण पखेरू उड़ गए। वह मर गया।

भीम ने हिडंबा तथा अनेक अन्य राक्षसों का भी वध किया, जो गाँव के लोगों के लिए आतंक बने हुए थे।

जब युधिष्ठिर हस्तिनापुर का शासन सँभाले हुए थे, सर्वसम्मति से निर्णय लिया गया कि युधिष्ठिर राजसूय यज्ञ का आयोजन करके सम्राट पद से विभूषित किये जाएँ। सम्राट बनने के लिए तत्कालीन अन्य सभी राजाओं को परास्त करना अपेक्षित था। इस कार्य की सफलता में केवल जरासंध ही बाधा के रूप में उपस्थित था।

जरासंध का वध करने का निर्णय लिया गया। उसे मल्लयुद्ध में हराकर मारने का भी निर्णय लिया गया। कृष्ण, अर्जुन तथा भीम

तीर्थ यात्रियों के वेश में निःशस्त्र मगध पहुँचे, परंतु जरासंध ने उनकी चाल को भँप लिया और सत्य बोलने को कहा। तब उन्होंने कहा “वास्तव में हम तुम्हारे शत्रु हैं। तुमसे मल्लयुद्ध के इच्छुक हैं। तुम हममें से किसी एक से मल्लयुद्ध करो।”

घमंड से अट्टहास करते हुए जरासंध बोला “कृष्ण तुम एक कायर ग्वाले हो। अर्जुन अभी बच्चा है। भीम अपनी शारीरिक क्षमता के लिए विख्यात है। इसी के साथ मैं मल्लयुद्ध करूँगा।”

वे दोनों योद्धा समानरूप से शक्तिशाली एवं कुशल थे। बारह दिन-रात तक युद्ध चालू रहा। अंत में भीम ने जरासंध को भूमि पर पटक़ा और उसकी टाँग खींच कर उसके दो टुकड़े कर दिये और उन्हें दूर फेंक दिया। सभी को बड़ी हैरानी हुई कि दोनों टुकड़े जुड़ गए और जरासंध पुनः जीवित हो उछल कर खड़ा हो गया। भीम ने लाचार होकर श्रीकृष्ण की ओर देखा। श्रीकृष्ण ने एक तिनका उठाकर उसे तोड़ा तथा दोनों टुकड़े विपरीत दिशाओं में फेंक दिये। भीम को संकेत समझ में आ गया। पुनः उसने जरासंध के दो टुकड़े किए तथा दोनों को विपरीत दिशाओं में फेंक दिया। इस प्रकार आतंकी जरासंध का अंत हुआ।

बारह वर्षों के वनवास के पश्चात् पाण्डवों ने विराट के राज्य में एक वर्ष गुप्त रूप से निवास किया। भीम वल्लभ नाम से राजा का रसोइया बना। द्रोपदी सैरंध्री के रूप में रानी सुदेशना की सेवा में रत रहीं। विराट की सेनाओं का सेनापति उसका साला कीचक था। वास्तव में राज्य में कीचक का ही शासन चलता था। वह बहुत बलशाली एवं धूर्त था।

रानी की नौकरानी सैरंध्री की सुंदरता पर वह मुग्ध हो गया। एक दिन रानी के साथ परामर्श करके उसने सैरंध्री को अपने कक्ष में बुलवा लिया तथा उसे समर्पण करने के लिए आग्रह किया। सैरंध्री ने हिंसात्मक रूप से प्रतिरोध किया तथा उसे परिणाम भुगतने की चेतावनी दी। तब कीचक ने उसे ठोकरें मारी और थप्पड़ लगाए। किसी प्रकार वह वहाँ से बचकर निकल गई। रात्रि को वह भीम से मिली और पूरी घटना उसे सुना दी। भीम ने उसके साथ एक योजना बनाई। उसके अनुसार सैरंध्री अगले दिन कीचक से मिली तथा उसे कहा कि वह उसकी इच्छा पूर्ण करना चाहती है। परंतु, डर व शर्म के कारण उसने विरोध किया था। उसे नृत्य-कक्ष में एकांत में मिलने के लिए कहा। जब रात्रि के समय कीचक कक्ष में पहुँचा, उसने सैरंध्री को चटाई पर लेटे हुए पाया। वह धीरे से उसके पास गया और उसे आलिंगनबद्ध करने लगा। ओह! यह क्या! यह तो भीम (वल्लभ) था। कुछ देर तक घोर संग्राम के बाद भीम ने कीचक को मार गिराया।

द्रोपदी के लिए सौगंधिका नाम के फूलों की खोज में भीम अकस्मात् अपने बड़े भाई हनुमान जी से मिले। हनुमान जी ने भीम को भावी युद्ध में विजयी होने का शुभाशीष दिया।

भीम ने महाभारत के युद्ध में अनेक महारथियों का वध किया। अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार अकेले ही उन्होंने धृतराष्ट्र के सभी पुत्रों का वध भी किया। अपनी गदा के साथ दुर्योधन की जंघाएँ तोड़ कर उसे यमपुरी पहुँचा दिया।

उसने दुःशासन की छाती चीरकर अट्टहास करते हुए उसका रक्त भी पिया। उसका अट्टहास (दहाड़) पूरे युद्धक्षेत्र में गूँजा तथा शेष कौरव सेना में भीम के नाम का आतंक (डर) बैठ गया।

अपने रक्त से सने हाथों से उसने द्रोपदी के बालों को धोकर बाँधा। □

अर्जुन

अर्जुन एक महान धनुर्धर के रूप में विख्यात थे। वे द्रोणाचार्य के स्वेच्छा (अपनी इच्छा) से ही स्वानुशासन का पालन करने वाले शिष्य थे। गुरु द्रोण ने सभी प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों की शिक्षा केवल उनको ही दी थी।

कुशलता की परीक्षा वाले दिन यद्यपि अर्जुन सर्वोत्तम सिद्ध हुए, परंतु कार्यक्रम के अंत में कर्ण ने आकर अर्जुन को चुनौती दे दी। परंतु कर्ण को अर्जुन के साथ स्पर्धा करने का अवसर नहीं दिया गया, अतः अर्जुन की श्रेष्ठता उस दिन सिद्ध नहीं हो पाई।

परंतु द्रोपदी के स्वयंवर पर यह श्रेष्ठता भी सिद्ध हो गई। एक बहुत भारी धनुष विवाह-कक्ष के मध्य में रखा गया। प्रतियोगियों के लिए स्वयंवर में जीतने की शर्त इस प्रकार थी। नीचे रखे हुए शीशे में देखकर बहुत दूर ऊपर घूमती हुई एक गोल प्लेट पर बनी मछली की आँख को तीर से बेधना था। अनेक राजकुमारों ने प्रयत्न किया, परंतु असफल रहे। जब कर्ण उठे तो सभी को लगता था कि वह अवश्य सफल होंगे। परंतु निशाना वह भी बाल-बाल चूक गये।

अंत में अर्जुन उठे। बड़ी सरलता से उन्होंने धनुष की प्रत्यंचा खींचकर बाण चलाया। बाण ठीक निशाने पर लगा। अर्जुन ने स्वयंवर की शर्त पूर्ण करके द्रोपदी को जीत लिया। अर्जुन असंदिग्ध

योद्धा होने के साथ-साथ अत्यंत गुणवान भी थे। जब वे स्वर्गलोक में अपने पिता इंद्र से मिलने गए, दिव्य सुंदरी अप्सरा उर्वशी



उनकी ओर आकर्षित हो गई। परंतु अर्जुन ने उसकी प्रार्थना अस्वीकार कर दी। निराश होकर क्रोध में अर्जुन को एक वर्ष के लिए नपुंसक हो जाने का कटु श्राप दिया। परंतु यह श्राप अर्जुन के लिए परोक्ष रूप से वरदान सिद्ध हुआ। क्योंकि एक वर्ष के अज्ञातवास के काल में अर्जुन नपुंसक ब्रह्मला बनकर राजा विराट के महल में राजकुमारियों एवं अन्य लड़कियों को नृत्य एवं गान सिखाते रहे।

जब त्रिगर्था ने विराट पर चढ़ाई की, विराट की सेना ने युधिष्ठिर, भीम, नकुल तथा सहदेव के मार्ग-दर्शन में विपक्षी सेना को पराजित करने के लिए प्रस्थान किया।

इसी समय ही भीष्म, द्रोण, कर्ण दुर्योधन एवं अन्य वरिष्ठ जनों के नेतृत्व में कौरव सेना ने भी आक्रमण कर दिया। उस समय अकेले अर्जुन ने ही पूरी सेना को पराजित किया।

निकट भविष्य में युद्ध की संभावनाओं का अनुमान लगाकर अर्जुन ने हिमालय में जाकर महादेव शिव की उपासना की। अर्जुन का उद्देश्य महादेव से कुछ अति उच्च क्षमता वाले दिव्यास्त्रों को प्राप्त करना था। दुर्योधन को अर्जुन की इस योजना का पता चल गया। उसने मकासुर को अर्जुन को असफल करने के लिए भेजा। मकासुर ने एक जंगली सुअर का रूप धारण करके अर्जुन पर आक्रमण किया।

अर्जुन ने एक बाण पशु की ओर छोड़ा। उसी समय शिव तथा पार्वती शिकारी के रूप में वहाँ घूम रहे थे। पशु को अर्जुन की ओर

झपटते देखकर शिकारी (महादेव शिव) ने भी एक बाण उसकी ओर छोड़ा। संयोग से मकासुर को दोनों बाण एक ही समय में लगे। शिकारी के द्वारा शिकार के नियमों का उल्लंघन करने के कारण अर्जुन शिकारी पर क्रुद्ध (नाराज) हुए। अर्जुन तथा शिकारी में युद्ध आरंभ हो गया, जिसमें अर्जुन को चोट लगी। तब दोनों में मल्ल युद्ध आरंभ हुआ। कभी न हारने वाला अर्जुन बेहोश हो गया। परंतु कुछ देर बाद वह उठा और आस-पास से फूल चुनकर महादेव शिव की उपासना फूलों से की। मंत्रोच्चार के साथ जो फूल अर्जुन ने महादेव शिव को समर्पित किये थे, वे सभी शिकारी दम्भति पर गिरने लगे। अर्जुन ने दोनों को शिव-पार्वती के रूप में पहचान कर क्षमा याचना की। शिव ने अपने भक्त का आलिंगन करके उसे पशुपति नामक अस्त्र (बाण) भेंट किया।

जब अर्जुन ने सुना कि उसके पुत्र अभिमन्यु का वध अनेक महारथियों ने मिलकर धोखे से किया है और उसका प्रमुख अपराधी जयद्रथ है, तो उन्होंने अगले दिन सूर्यास्त से पूर्व ही जयद्रथ का वध करने की प्रतिज्ञा की। यद्यपि पूरी सेना ने जयद्रथ को बचाने का पूरा प्रयत्न किया, अर्जुन ने मार्ग में आने वाले सभी शत्रुओं को अपने बाणों से बाँध दिया और श्रीकृष्ण की सहायता एवं आशीर्वाद से अपनी प्रतिज्ञा पूरी की।

युद्ध के सत्रहवें दिन अर्जुन को अपने घोर विरोधी एवं शत्रु कर्ण का सामना करना पड़ा। वे दोनों उस काल के सर्वोत्तम योद्धा थे। कर्ण ने नागास्त्र चलाया। श्रीकृष्ण ने रथ को कई इंच नीचे दबा (झुका) लिया। अन्यथा अर्जुन का वध हो जाता। कर्ण का

सर्पबाण अर्जुन के सिर से ऊपर निकल गया व उसके सिर पर टोप से जा टकराया। परंतु कर्ण का मृत्युकाल समीप आ चुका था। उसका रथ कीचड़ में फँस गया। उसी स्थिति में श्रीकृष्ण की प्रेरणा से अर्जुन ने अपने घातक बाण से कर्ण का सिर काट दिया। □

नकुल और सहदेव

नकुल भाइयों में चौथे तथा सहदेव सबसे छोटे थे। वे दोनों देवताओं के चिकित्सक (वैद्य) अश्विनी देव के आशीर्वाद से उत्पन्न हुए थे। मादरी उनकी माता थी। क्योंकि वन में पाण्डु स्वर्ग सिधार गए थे तथा मादरी उनके साथ सती हो गई थी, कुंती ने ही शेष तीनों भाइयों के साथ दोनों को विशेष ध्यानपूर्वक पाला।

राजा विराट के यहाँ एक वर्ष के अज्ञातवास के काल में नकुल धर्मग्रंथी नाम से घुड़शाला में घोड़ों के प्रशिक्षण के लिए नियुक्त किये गए। पशु चिकित्सा में वह तज्ञ थे।

सहदेव, जिन्हें युधिष्ठिर ज्ञान में असुरों के गुरु शुक्र के समान योग्य मानते थे, विराट की गोशाला में गायों (गऊओं) की देखरेख के लिए नियुक्त किए गये। युधिष्ठिर ने जब राजसूय यज्ञ का आयोजन किया, सहदेव ने ही श्रीकृष्ण के नाम का प्रथम विशेष पूज्य व्यक्ति के नाते प्रस्ताव रखा था। दोनों भाइयों ने महाभारत युद्ध में वीरता एवं साहसपूर्ण ढंग से पौरुष एवं पराक्रम दिखाया। शत्रु सेना के असंख्य सैनिकों को यमलोक पहुँचाया। सहदेव ने महाभारत के दुष्ट एवं षड्यंत्रकारी पात्र शकुनि का वध किया। □

अभिमन्यु

महाभारत का सबसे छोटा वीर योद्धा अभिमन्यु था। सोलह वर्ष की आयु में वह युद्ध में वीरगति को पा गया (मारा गया)। उसका वध कुरुक्षेत्र के युद्ध क्षेत्र में अनैतिक हत्याओं में से एक था।

अभिमन्यु अर्जुन व सुभद्रा का पुत्र था तथा श्रीकृष्ण का भांजा (बहन का पुत्र) था। कोमल आयु में ही बालक अभिमन्यु अपने पिता एवं चाचा-ताउओं से युद्ध कला के सभी अस्त्र-शस्त्रों की शिक्षा लेकर निपुण (तज्ञ) हो गया था।

सोलह वर्ष की आयु में ही राजा विराट की पुत्री उत्तरा से उसका विवाह करा दिया गया। युद्ध में उसके वध के समय उसके विवाह को हुए केवल बीस दिन ही हुए थे।

प्रथम दिन के युद्ध में पाण्डवों की सेना की भीषण क्षति (हानि) हुई। जहाँ कहीं भी भीष्म जाते वहाँ मौत का तांडव नृत्य होता। (सैनिक बहुत संख्या में मारे जाते)। अभिमन्यु यह सहन नहीं कर सका। उसने भीष्म पितामह पर आक्रमण कर दिया। यह दृश्य अत्यंत विरोधाभासी था। एक ओर एक ही वंश के वरिष्ठतम प्रौढ़ भीष्म पितामह थे, दूसरी ओर उसी वंश का सबसे छोटा बालक था। दोनों आमने-सामने होकर युद्ध कर रहे थे। ज्यों ही अभिमन्यु का रथ महानतम योद्धा भीष्म की ओर चुनौती देता हुआ बढ़ता, बहुत से वरिष्ठ जन बीच में आकर भीष्म का बचाव करते हुए

अभिमन्यु से युद्ध करते। उसी टकराव (युद्ध) के बीच कृतवर्मा को अभिमन्यु का एक बाण तथा साल्व को पाँच बाण लगे। भीष्म को अभिमन्यु के नौ बाण लगे। दुर्मुख का रथ नष्ट हो गया तथा उसका शीश कटकर धरती पर लोट-पोट होने लगा। अभिमन्यु के एक बाण से कृपाचार्य का धनुष टूट गया।

पाण्डवों की सेना प्रथम दिन ही समाप्त हो जाती। यदि वीर बालक अभिमन्यु भीष्म से टकराने का साहस न करते। जब और जहाँ भी पाण्डव सेना में खलबली मचती, अभिमन्यु तुरंत वहाँ पहुँचकर मोर्चा सँभाल कर रक्षा करते।

युद्ध के तेरहवें दिन अर्जुन को मुख्य युद्ध क्षेत्र से हटकर उन्हें चुनौती देने वालों से युद्ध करना पड़ा, द्रोणाचार्य ने सेना की 'कमल व्यूह' में रचना की। फिर युधिष्ठिर पर सीधा आक्रमण कर दिया। भीम, सात्यकी, धृष्टद्युम्न, चेकितान, कुंतीभोज, द्रुपद, घटोत्कच, युद्धमन्यु, शिखंडी, उत्तमौजस, विराट, कैकेय तथा अन्य अनेक योद्धाओं ने द्रोणाचार्य को रोकने का प्रयास किया, परंतु वे सब असफल हो गए तथा व्यूह तोड़ नहीं सके।

तब निर्भीक महारथी अभिमन्यु ने अपना रथ द्रोणाचार्य की ओर मोड़ा। उसके पुराने अनुभवी सारथी सुमित्र ने उन्हें सतर्क किया "आचार्य कुशलता एवं अनुभव में अतुलनीय हैं। यद्यपि आप वीरता में उनके समान हैं।"

निडर योद्धा अभिमन्यु ने रथ को आगे बढ़ाने का आदेश दिया। उसने कौरव सेना को छिन्न-भिन्न कर दिया। व्यूह को तोड़कर अपने बढ़ने का मार्ग बनाया। परंतु जयद्रथ ने समय पर सभी को

सावधान करके व्यूह रचना पुनः सुधार कर दृढ़ कर ली।

कौरव योद्धा एक-एक करके गिरते गए। अभिमन्यु के बाणों से सैनिकों के शरीर घायल होकर भूमि पर गिरते जाते। सारा युद्ध क्षेत्र बाणों, धनुषों, तलवारों, ढालों, रथ के टुकड़ों, कुल्हाड़ियों, भालों आदि युद्ध के शस्त्रों तथा सैनिकों के सिरों से पटा पड़ा था (भरा हुआ था)।

अभिमन्यु की युद्ध की गति को रोकने में असमर्थ कौरव योद्धाओं, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, कर्ण, शकुनि, साल्व तथा अन्योंने मिलकर अभिमन्यु पर सामूहिक आक्रमण किया। परंतु वह निश्चित होकर एक-एक को बारी-बारी हराता रहा। तब दुःशासन अपना रथ अभिमन्यु के रथ के सामने ले आया। काफी देर तक युद्ध चलता रहा। दुःशासन बेहोश होकर अपने रथ पर ही गिर पड़ा तथा उसके रथवान ने रथ को दूर ले जाकर दुःशासन की जान बचा ली। तब अभिमन्यु पर कर्ण ने आक्रमण किया। परंतु अभिमन्यु के एक बाण ने कर्ण के धनुष को तोड़ दिया। इस परिस्थिति का लाभ उठाकर अभिमन्यु ने कर्ण और उसके सहायकों को युद्ध में उलझाये रखा। कौरव सेना पूरी तरह से हत-प्रभ (निराश) हो चुकी थी।

युद्ध के नियमानुसार ईमानदारी से युद्ध करने में असमर्थ कौरव योद्धाओं को देखकर द्रोणाचार्य ने विश्वासघात (धोखा) किया। उन्होंने कर्ण के कान में कहा "अभिमन्यु के कवच को छेदना असंभव है। घोड़ों की लगामों को निशाना बनाकर उसे असमर्थ करके पीछे से उस पर आक्रमण करो।" कर्ण ने वैसा ही किया और अभिमन्यु धराशायी हो गया। □

कुंती तथा मादरी

राजा शूरसेन की एक गुणवंती तथा रूपवती कन्या पृथा थी। उनके चचेरे भाई कुंतीभोज के यहाँ कोई संतान नहीं थी। अतः उन्होंने पृथा को गौद ले लिया। उसके बाद से उसका नाम कुंती हो गया। पुरु वंश के राजा पाण्डु ने कुंती तथा मादरी से विवाह किया।

पाण्डु निःसंतान थे। कुंती को दुर्वासा ऋषि से एक दिव्य मंत्र प्राप्त हुआ था। जब वह किशोरी थी। ऋषि ने वरदान दिया था कि “मंत्र जाप के साथ जिस देवता का आह्वान करोगी, वह तुम्हें अपने जैसा गुणवान पुत्र देंगे।” उस मंत्र की सहायता से कुंती के तीन पुत्र तथा मादरी के दो पुत्र हुए। पाँचों पाण्डु के नाम पर पाण्डव कहलाए। वन में पाण्डु की मृत्यु के पश्चात् मादरी सती हो गई। (पति के साथ ही अग्नि में कूद गई)। कुंती ने पाँचों का लालन-पालन किया।

कुंती एक अत्यंत शालीन महिला थी। उन्हें सांसारिक व्यवहार की गहरी समझ थी। युधिष्ठिर को उन्होंने अनेक अवसरों पर उचित परामर्श देकर उनका उत्साह बढ़ाया। परंतु उन्होंने अपने दुःखों एवं चिंताओं को भुला दिया। वारणावत के लाक्षागृह अग्निकांड के पश्चात् एकचक्र नगरी के ब्राह्मण के घर में कुंती ने पूरी समझदारी, परिपक्वता एवं कुशलता दिखाई।

कुंती ने जीवन चिंताओं एवं परेशानियों में बिताया। उन्हें अपने

पुत्रों के बारे में छिपाया। रहस्य अन्य लोगों तक प्रकट होने की चिंता सताती थी। कर्ण के जन्म की घटना भी उनमें से एक थी। ऐसा कहा जाता है कि कुंती के आग्रह पर पाँचों पाण्डवों ने द्रोपदी को सामूहिक (साँझी) पत्नी मान लिया क्योंकि अलग-अलग पत्नियाँ बच्चों को आपस में लड़वाकर घर की एकता भंग करेंगी, ऐसा कुंती का अनुमान था। कुंती को पक्का विश्वास था कि उसके पुत्र भविष्य में अवश्य राज्य करेंगे। □

द्रोपदी

राजा द्रुपद की एकमात्र पुत्री द्रोपदी का वास्तविक नाम कृष्णा था। वह नील (काले) वर्ण (रंग) की थी। वह यज्ञ की अग्नि से प्रकट हुई थी। यद्यपि वह पाँच महारथियों की पत्नी थी, परंतु उसने अपने जीवन में अगणित (अपार) संकट तथा यंत्रणाएँ झेलीं। एक बार तो वह राज्य की महारानी भी थी, परंतु दुर्भाग्य ने उसे अन्याय तथा अपमान सहन करने पर विवश किया। उसे दुर्योधन, कर्ण, दुःशासन एवं शकुनि एवं अन्य सभी के द्वारा अपमान एवं कटाक्ष सहन करने पड़े।

वनवास के काल में उसे घोर संकटों का सामना करना पड़ा। विधि का विधान देखिए! एक समय की रूपवती महारानी को जंगलों में भूखे-प्यासे गरीबी के दिन बिताने पड़े। यहाँ तक कि विराट की राजधानी में रानी सुदेशना की दासी के रूप में उनकी सेवा भी करनी पड़ी।

श्रीकृष्ण के साथ द्रोपदी की मित्रता एवं भक्ति विशेष रूप से अतुलनीय थी। जब कभी वह संकट में होती थी, सदा एकमात्र श्रीकृष्ण ही उसका सहारा व सहायक बने, न कि उसके पाँच शक्तिशाली पति। जब दुष्ट दुःशासन ने कौरवों के दरबार में उसके 'चीर हरण' का प्रयत्न किया, उसने श्रीकृष्ण का ध्यान किया, उन्हें अपना स्वाभिमान एवं सम्मान बचाने की प्रार्थना की।

ज्यों-ज्यों दुःशासन ऊपर का वस्त्र (साड़ी) खींचता जाता, त्यों-त्यों साड़ी बढ़ती ही जाती। यह दुष्कर्म करते-करते दुष्ट दुःशासन थक कर भूमि पर गिर गया व बेहोश हो गया।

एक बार विख्यात क्रोधावतार दुर्वासा ऋषि दुर्योधन की कुप्रेरणा से वन में पाण्डवों के यहाँ असंख्य साथियों के साथ पधारे। पाण्डवों ने उनका यथा योग्य स्वागत-सत्कार किया। ऋषि ने युधिष्ठिर से कहा, "हमें भूख लगी है। स्नान-ध्यान करके हम तुरंत लौटेंगे, तब तक भोजन तैयार करवा लें।"

द्रोपदी एकदम दुर्वासा के आतंक (क्रोध) के बारे में सोचकर घबरा गई। द्रोपदी को सूर्य देव ने एक दिव्य पात्र भेंट किया था। साथ ही वर दिया था कि जब तक द्रोपदी उस पात्र में से खाना नहीं खा लेगी, वह पात्र मन चाहे व्यंजन एवं भोजन देता रहेगा। संयोग से तब तक द्रोपदी भोजन कर चुकी थी। अब पात्र से और भोजन प्राप्त करने की संभावना समाप्त थी। दुर्वासा ऋषि के अभिशाप से त्रस्त होकर (डरकर) द्रोपदी ने श्रीकृष्ण का ध्यान करके उनकी उपासना की। तुरंत श्रीकृष्ण प्रकट हुए और बोले "कृष्णा (द्रोपदी)! बहुत भूख लगी है। भोजन परोसिए।" यह सुनकर द्रोपदी अत्यंत विचलित (दुख से परेशान) हो गई। उसने श्रीकृष्ण को बताया कि अब पात्र से खाना नहीं मिलेगा। श्रीकृष्ण ने कहा "चिंता मत करो, वह बर्तन मुझे दिखाओ" ऐसा कहकर उन्होंने द्रोपदी से वह पात्र लेकर उसमें ध्यानपूर्वक झाँका-टटोला। उन्हें पात्र के कोने में अन्न का एक अत्यंत सूक्ष्म-सा दाना चिपका हुआ दिखाई दिया। उन्होंने उसी दाने को खाकर संतोष व्यक्त किया।

उनके संतुष्ट होते ही ऋषि दुर्वासा व उनके साथियों को भी स्वादिष्ट भोजन करके संतुष्ट की अनुभूति हुई तथा वे द्रोपदी को शुभाशीष देते हुए बाहर से ही लौट गए।

युद्ध आरंभ होने से पूर्व शांति-दूत के रूप में श्रीकृष्ण स्वेच्छा से हस्तिनापुर जाने के लिए तैयार हुए। द्रोपदी ने उन्हें अपने खुले व उलझे हुए बाल दिखाए व स्मरण कराया कि उसके बाल दुःशासन के रक्त से धुलने के बाद ही सुलझाए व गूँथे जाएँगे। श्रीकृष्ण ने उन्हें आश्वासन देकर ढाँढ़स बँधाया।

एक क्षत्राणी राजकुमारी एवं महारानी द्रोपदी ने अपने स्वाभिमान के साथ समझौता नहीं किया। उसे सदा स्मरण रहता था कि दुष्ट दुःशासन ने भरी सभा में उसे बालों से पकड़कर घसीटा था तथा उसने उसी समय सबके सामने यह प्रतिज्ञा की थी कि वह दुःशासन के रक्त से बाल धोने के बाद ही बालों को संवारेगी। यह प्रतिज्ञा उसके उज्ज्वल चरित्र का दर्शन कराती है। और उसने अपने पति भीम के द्वारा दुःशासन का वध करने और उसकी छाती का रक्त द्रोपदी को देने के बाद ही अपने बाल संवारे व गूँथे।

उसके कष्टों की कथा का अंत अभी तक नहीं हुआ था। युद्ध जीतकर पाण्डवों ने अपना राज्य वापस पा लिया। परंतु उसके तुरंत बाद द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा ने द्रोपदी के पाँचों पुत्रों एवं उसके भाई धृष्टद्युम्न की सोते समय हत्या कर दी थी। द्रोपदी ने अर्जुन से कहा कि अश्वत्थामा के वध के बाद ही उसे शांति मिलेगी। अर्जुन ने उसकी यह भी इच्छा पूर्ण कर दी। □

धृतराष्ट्र

विचित्रवीर्य के ज्येष्ठ पुत्र धृतराष्ट्र थे। वे जन्मांध होने के कारण राजा नहीं बन सके। उनके छोटे भाई पाण्डु को ही राजा घोषित किया गया। परंतु पाण्डु की असमय मृत्यु के कारण धृतराष्ट्र ने राजा का कार्यभार सँभाला।

यद्यपि उचित व अनुचित, करणीय व अकरणीय का ज्ञान उन्हें भली प्रकार से था, तो भी पुत्र मोह में वे निष्पक्ष नहीं रह पाए। अपने अंधेपन के कारण उनके साथ हुए अन्याय के विचार के कारण वह अनुचित निर्णय लेते रहे। यही उनके विनाश का मूल कारण बना।

उदाहरण के रूप में, युधिष्ठिर प्रथम बार जुआ खेलकर अपना सर्वस्व गँवा बैठे तथा उन्हें वनवास का दंड स्वीकार करना पड़ा। उस समय धृतराष्ट्र ने उनको बुलाकर उनका खोया हुआ सर्वस्व लौटा दिया। इस घटना से उनकी न्यायप्रियता के दर्शन होते हैं। परंतु अपने पुत्र-मोह में युधिष्ठिर को पुनः जुआ खेलने के लिए बुलाना अन्याय ही दर्शाता है।

ऐसा कहा जाता है कि धृतराष्ट्र में एक हजार हाथियों के समान बल था। यह सत्य है कि शारीरिक बल की दृष्टि से वे बहुत बलवान थे। जब उन्होंने यह सुना कि अकेले भीम ने ही उनके सभी पुत्रों का वध किया था, भीम के बारे में उनके क्रोध का

पारावार न रहा। भीम से बदला लेने की आंतरिक भावना से वह जल रहे थे।

युद्ध समाप्ति के बाद भीम उनसे मिलने गए। श्रीकृष्ण भी भीम के साथ गए। श्रीकृष्ण दुष्टों के साथ दोहरी दुष्टता से व्यवहार करने वालों में से थे। उन्होंने धृतराष्ट्र की बदले की आंतरिक भावना को पहचान लिया। इसलिए उन्होंने भीम की एक लोहे की मूर्ति बनवा ली थी। जब धृतराष्ट्र ने भीम को आलिंगन के लिए पास बुलाया, श्रीकृष्ण ने भीम के स्थान पर लोहे की मूर्ति का ही आलिंगन करवा दिया। भीम को आलिंगन के बहाने धृतराष्ट्र ने लोहे की मूर्ति को अपने शक्तिशाली आलिंगन से चकनाचूर कर दिया। मूर्ति के अनेक टुकड़े हो गए। □

दुर्योधन

दुर्योधन हस्तिनापुर का राजकुमार तथा राज्य का उत्तराधिकारी था। वह ईर्ष्या एवं लोभ का अवतार था। वह एक अद्भुत इच्छाशक्ति का सुदृढ़ व्यक्ति था। वह एक अच्छा वक्ता व राजनीतिज्ञ था। वह एक अच्छा मित्र भी था। भले ही स्वार्थवश ही क्यों न हो, उसने कर्ण की योग्यताओं को पहचान कर उसे मित्र बनाकर अंग राज्य का राजा घोषित कर दिया तथा कर्ण से जीवन के अंतिम क्षण तक मित्रता निभाई।

उसमें स्वछंद रूप से शासन करने की क्षमता थी। उसके आदेश का पालन न करने की हिम्मत किसी में नहीं थी। उनके पिता राजा धृतराष्ट्र या पितामह भीष्म में भी नहीं।

दुष्ट व्यक्ति की दुष्टता की क्या सीमा हो सकती है, दुर्योधन उस दुष्टता का प्रतीक है। उसने अनेक बार व अनेक प्रकार से भीम की हत्या करने के असफल षड्यंत्र रचे। अपने पिता की पूर्ण सहमति से उसने पाण्डवों के लिए लाक्षागृह का निर्माण करवाकर पाण्डवों को जीवित जलाने की योजना बनाई। अपने मामा शकुनि के सहयोग से युधिष्ठिर को धोखा देकर वह सब हथिया लिया, जो कानूनी रूप से और वंश परंपरा से उनका था। पाण्डवों को देश निकाला देकर जंगलों में भिजवाने के बाद वह उनको दुखी होते हुए देखने एवं आनंदित होने के उद्देश्य से पाण्डवों के पास वन की ओर

चल दिया। षड्यंत्र रचकर ऋषि दुर्वासा को पाण्डवों को शापित करने के उद्देश्य से पाण्डवों के पास जाने के लिए प्रेरित किया। मकासुर को जंगली सुअर के छद्मरूप में अर्जुन का वध करने के लिए तैयार किया। बिना युद्ध के 'सुई की नोक पर जमीन देना' भी स्वीकार नहीं किया।

अपने समस्त भाइयों तथा असंख्य मित्रों, साथ ही सभी योद्धाओं के विनाश के बाद वह एक तालाब में कूद कर छिप गया। अन्ततोगत्वा भीम के साथ द्वन्द्व युद्ध में भीम ने उसकी जंघा चीर दी और वह (दुर्योधन) मारा गया। □

शकुनि

शकुनि महारानी गांधारी का भाई तथा दुर्योधन का मामा था। वह दुष्टता की सीमा का प्रतीक था। कौरव वंश के पूर्ण विनाश के लिए वातावरण बनाने और उसे कार्यान्वित करने वाला प्रमुख पात्र शकुनि ही था। शकुनि ही दुर्योधन के लिए सभी दुर्नीतियाँ बनाता था। यदि वह दुर्योधन को उत्तम सलाह देता, तो महाविनाशकारी युद्ध को टाला जा सकता था।

लाक्षागृह उसी की योजना से बनवाया गया। पासे के खेल में युधिष्ठिर को बुलवाकर धोखे से हराने का विचार भी उसी का ही था। 'अक्षरहृदया' मंत्र के द्वारा पासे के खेल में युधिष्ठिर को हराकर उनका सर्वस्व छीन लेने का कार्य उसी ने करवाया। परिणामस्वरूप पाण्डवों को बारह वर्षों तक वनवास तथा तेरहवें वर्ष में अज्ञातवास का दंड भी भोगना पड़ा। अज्ञातवास में पहचाने जाने पर पुनः तेरह वर्षों के दंड की शर्त भी उसी ने ही रखवायी।

अपने समस्त भाइयों तथा असंख्य मित्रों के साथ सभी योद्धाओं के विनाश के बाद वह एक तालाब में कूद कर छिप गया। अन्ततोगत्वा भीम के साथ द्वन्द्व युद्ध में भीम ने उसकी जंघा चीर दी और वह (दुर्योधन) मारा गया। □

गांधारी

एक अत्यंत सात्विक व्यक्तित्व की महिला गांधारी नारी-मात्र के लिए आदर्श उदाहरण के रूप में थी। अपने भाई शकुनि तथा बड़े बेटे के नेतृत्व में उसके बेटों के द्वारा किए गए धार्मिक कुकृत्यों के कारण उसको जीवनभर अकथनीय मानसिक यातनाओं को सहन करना पड़ा।

वह गंधार नरेश की पुत्री तथा कौरवों के राज्य की महारानी थी। वह अति अल्प भाषिणी थी।

जब जानकारी मिली कि उसका विवाह एक जन्मांध राजा से होने वाला है तो उसने भी अपनी आँखों पर पट्टी बाँधकर पति के समान ही दृष्टिहीन रहने का संकल्प कर लिया। “जो सुख मेरे पति को नहीं मिला, उस सुख का उपयोग मैं भी नहीं करूँगी।” यह पावन विचार उसके पतिव्रता होने का प्रमाण है। वास्तविक जीवन या पुराणों में ऐसी पवित्र आत्मा के कितने कम उदाहरण मिलेंगे!

युद्धारंभ से पूर्व जब दुर्योधन उसके पास आशीर्वाद लेने के लिए पहुँचा तो उसे यही कहा “यतो धर्मः ततो जयः” अर्थात् “जहाँ धर्म है, वहीं विजय है।”

कोई भी माता, जिसका पुत्र भले ही अत्यंत दुष्ट और दुष्चरित्र ही क्यों न हो, अपने पुत्र की सफलता एवं कल्याण का ही विचार

करेगी। परन्तु पवित्र विचारों की अतुलनीय माता गांधारी पुत्र से कहती थी। “पुत्र, सदा धर्म की ही जय होती है।”

गांधारी ने युद्ध में धर्म की विजय देखी। उसके सभी अधर्मी पुत्र युद्ध में मारे जा चुके थे। वह टूट चुकी थी तथा दहाड़ें मार-मार कर रो रही थी। □

उपसंहार

युधिष्ठिर ने अपने भाइयों संबंधियों एवं मित्रों के साथ देश पर राज्य किया। धृतराष्ट्र एवं गांधारी की, अपने ही माता-पिता के समान, सेवा व देखरेख की। उनके राज्य में देश समृद्धिशाली हुआ। 36 वर्ष राज्य करने के पश्चात् युधिष्ठिर कुंतो, धृतराष्ट्र तथा गांधारी के साथ वाणप्रस्थी होकर वनों में चले गए। □

